AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

संघवादः भारत का योगदान

ORIGINAL ARTICLE

Author
शेखर चंद्र
शोधार्थी
बौद्ध अध्ययन विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध सार

शोध पत्र में संघवाद के प्रति भारतीय दृष्टिकोण और योगदान पर आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। संघीये ढांचे द्वारा लोकतंत्र की विशिष्ट क्षमताओं का आँकलन किया गया है। शोध पत्र का उद्देश्य भारत में सरकार की प्रणाली को संदर्भित करते हुए संवैधानिक ढांचा और शक्तियों के विभाजन की विशेषताओं के आलोक में भारत की संघीय व्यवस्था में आस्था और गंभीरता को प्रदर्शित करना है। इस शोध पत्र में भारत की संघीय संरचना इसके विविध सांस्कृतिक, भाषाई और क्षेत्रीय मतभेदों की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखकर विषय को स्पष्ट किया गया है। एक संघीय ढांचे के भीतर विभिन्न पहचानों और हितों को समायोजित करके, भारत ने प्रदर्शित किया है कि कैसे संघवाद राष्ट्रीय एकता को बनाए रखते हुए विविधता के प्रबंधन के लिए एक अच्छी व्यवस्था हो सकता है। इसमें यह भी पाएंगे कि कैसे दशकों से भारत की संघीय प्रणाली ने बदलते राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भों का जवाब देने में अनुकूलनशीलता और लचीलेपन का प्रदर्शन किया है। संविधान में संशोधन, अंतर सरकारी वार्ता और न्यायिक हस्तक्षेप ने भारतीय संघवाद के विकास में योगदान दिया है। इस पक्ष पर भी जोर दिया गया है कि संघवाद के प्रति भारत का योगदान विविधता के प्रबंधन प्रशासनिक स्तर पर आपसी तालमेलए राज्यों की मूल पहचान से छेड़छाड़ किये बिना शांतिपूर्वक शक्ति विभाजन के दृष्टिकोण में है। भारत का महान लक्ष्य संघवाद के मूल्यों से समझौता नहीं करना है। लोकतान्त्रिक मूल्यों पर चलते हुए एक सशक्त और आत्मनिर्भर भारत बनाने के संकल्प पर आगे बढ़ना है और यही सिद्धांत विश्व में भारत को एक जिम्मेदार लोकतंत्र की पहचान दिलाता है।

मुख्य शब्द

संघ, आत्मनिर्भर, लोकतंत्र, भारत.

परिचय

भारत खुद को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र बताने में बहुत गर्व महसूस करता है।[1] हालाँकि, यह लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसे संघीय ढांचे द्वारा उल्लिखित किया गया है जबकि लोकतंत्र बहुमत की राय का प्रतिनिधित्व करता है। संघवाद अल्पसंख्यकों की आवाज़ को व्यवस्थित करता है और जोड़ता है, सामाजिक न्याय की स्थापना करता है। यह पूरे व्यवस्था के सामंजस्यपूर्ण कार्य को सुनिश्चित करता है।

संघवाद और सांस्कृतिक और जातीय बहुलवाद ने देश की राजनीतिक व्यवस्था को बहुत लचीलापन दिया

है, हालाँकि, न केवल संघवाद को जारी रखा है, बल्कि सहकारी और रचनात्मक संघवाद को भी जारी रखा है।

संघवाद शब्द का प्रयोग समय–समय पर विभिन्न संदर्भों में किया जाता रहा है। वस्तुतः शाब्दिक एवं वैचारिक प्रयोग ने इसके अर्थ को विकृत कर दिया है। लोकतंत्र की तरह संघवाद के भी अलग–अलग विचारकों ने अलग–अलग अर्थ निकाले हैं। सिद्धांत रूप में, संघीय राज्य का संगठनात्मक स्वरूप वह है जिसमें किसी समाज में राष्ट्रीय एकता और क्षेत्रीय स्वायत्तता के बीच संतुलन स्थापित किया जाता है।

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कुछ स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाएँ ऐसा करने का प्रबंधन करती हैं जिसमें वे सामान्य समस्याओं के लिए संयुक्त नीतियाँ बना सकते हैं और संयुक्त निर्णय लेकर उनका समाधान कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में, संघवाद सामान्य राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक संवैधानिक तंत्र है, जिसमें देश की अखंडता, अलगाववादी प्रवृत्तियों को समेकित किया जाता है और विविधता में एकता सुनिश्चित की जाती है।[2]

भारत में, संघवाद राज्य संबंधों पर केंद्रीय रूप से विशिष्ट संबंधों पर केंद्रित है। चाहे वह वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) का संदर्भ हो या स्वच्छ भारत अभियान का, संघ और राज्यों के बीच संवैधानिक संबंधों पर ऐसे उपायों और प्रस्तावों के प्रभाव पर आम तौर पर चर्चा की जाती है। हालाँकि हम कह सकते हैं कि यह भारतीय संदर्भ में बहुत आवश्यक और प्रासंगिक है, लेकिन यह एकमात्र ढांचा नहीं है जिसके भीतर हमें इस विषय को देखना चाहिए। भारत सरकार तीन स्तरों में विद्यमान है, नगरपालिका, प्राधिकरण और पंचायतें जैसे केंद्र, राज्य और स्थानीय निकाय। हालाँकि संघीय व्यवस्था के रूप में यह केवल ढाई स्तर की है, इसका कारण यह है कि नगरपालिका और पंचायत के तीसरे पक्ष में केवल चुनी गई राज्य सरकारों को शक्तियां प्राप्त हैं।[3] जबकि जीएसटी, हिंदी प्रचार और ऐसे अन्य मुद्दों पर केंद्र–राज्य संबंधों पर बहस हुई है। भारतीय शहरीकरण में वृद्धि और शासन की विफलता के कारण, भारत में शहरी स्थानीय सरकार में हाल ही में चर्चा में वृद्धि हुई है। ग्रामीण स्वशासन भी विकसित हुआ है।

ब्रिटिश सरकार के अधीन स्थापित स्थानीय स्वशासन, ग्राम पंचायत या नगर निकाय संविधान में एक स्पष्ट गलती थी क्योंकि यह पहली बार अधिनियमित किया गया था। अनुच्छेद 40, संविधान शासन के इस महत्वपूर्ण पहलू पर लगभग पूरी तरह से चुप था। राज्य सरकार को स्थानीय सरकार पर कानून बनाने की शक्ति देने के अलावा, संविधान में इस स्तर की सरकार की वांछनीयता या संरचना के बारे में कहने के लिए कुछ नहीं है।

1992 में ही संविधान (सातवां–तीसरा संशोधन) अधिनियम, 1973 द्वारा संविधान में संशोधन किया गया था,[4] ताकि ''संविधान में पंचायती राज संस्थाओं की कुछ बुनियादी और आवश्यक विशेषताएं प्रदान की जा सकें, निरंतरता और मजबूती प्रदान की जा सके।'' 74वें संशोधन में शहरी स्थानीय निकायों को राज्य सरकारों के साथ अपने संबंधों को मजबूत बनाने का प्रयास किया गया। राज्य सरकारों ने पर्याप्त संशोधन नहीं किये हैं।

भारत में सहकारी संघवाद

भारतीय संविधान का संघीय चरित्र इसकी मुख्य विशेषताओं में से एक है, हालाँकि 'संघ' शब्द का प्रयोग संविधान में कहीं भी नहीं किया गया है।[5] संविधान में शासन की एक संरचना प्रदान की गई है, जो मूलतः संघीय है। इसमें एक संघ की सभी सामान्य विशेषताएँ होती हैं, अर्थात् दो सरकारें, शक्तियों का विभाजन, लिखित संविधान, संविधान की सर्वोच्चता, संविधान की कठोरता और स्वतंत्र न्यायपालिका; हालाँकि, भारतीय संविधान में बड़ी संख्या में एकात्मक या गैर–संघीय सुविधाएँ, एक संविधान, एकल नागरिकता, संविधान का लचीलापन, एकीकृत न्यायपालिका, केंद्र द्वारा राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति, समृद्ध भारतीय सेवाएँ, आपातकालीन प्रावधान, और जल्द ही।

दूसरी ओर, अनुच्छेद 1 भारत को 'राज्यों का संघ' के रूप में वर्णित करता है, जिसके दो अर्थ हैं एक, भारतीय संघ राज्यों द्वारा किसी समझौते का कोई परिणाम नहीं है; और दो; किसी भी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं है।[6] अतः भारतीय संविधान को विभिन्न रूपों में संघवाद के रूप में 'एकात्मक' बताया गया है।

संघीय व्यवस्था के ढांचे के अंतर्गत संविधान ने केंद्र सरकार को अधोगामी अधिकार दिये हैं। राज्यों को अपनी कार्यकारी शक्ति का उपयोग केंद्र सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों का पालन करने के लिए करना चाहिए न कि संघ

की कार्यकारी शक्ति में बाधा डालने के लिए। राज्यों की देखरेख के लिए केंद्र सरकार राज्यपालों की नियुक्ति करती है। केंद्र राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दों या राज्यों के कार्यकारी अधिकारियों के टूटने पर राज्य की संवैधानिक मशीनरी को अपने अधिकार में ले सकता है। केंद्र सरकार को दी गई अतिप्रवाह शक्तियों को ध्यान में रखते हुए, भारतीय संघ को अक्सर 'अर्ध–संघ', 'व्यावहारिक संघ' या 'मजबूत एकात्मक विशेषताओं वाला संघ' के रूप में वर्णित किया गया है।

सांस्कृतिक और जातीय बहुलवाद के साथ, संघवाद ने देश की राजनीतिक व्यवस्था को बहुत लचीलापन दिया है, और इसलिए आवास के माध्यम से तनाव का सामना करने की क्षमता दी है। हालाँकि, न केवल संघवाद को जारी रखना है बल्कि सहकारी और रचनात्मक संघवाद को भी जारी रखना है।

मजबूत राज्यों को एक मजबूत केंद्र की आवश्यकता होती है। भारतीय संघ को अपनी संस्कृति की बहुलता को जातीय, भाषाई, धार्मिक और अन्य विविधताओं के संदर्भ में, राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय स्तरों पर और राज्यों के माध्यम से अपनी लोकतांत्रिक प्रणाली के शासन के संदर्भ में देखना चाहिए। भारत सबसे बड़ा लोकतंत्र है और दुनिया का सबसे बड़ा संघीय और सबसे बड़ा बहुराष्ट्रीय देश है।[7] जबकि लोकतंत्र सभी को स्वतंत्रता प्रदान करता है, संघ यह सुनिश्चित करता है कि प्रशासन अलग–अलग वितरित किया जाए और एक मजबूत केंद्र सरकार महासंघ के माध्यम से 'विविधता के बीच एकता' को बनाए रखने में सक्षम बनाए।[8] देश अपनी सद्भावना और अखंडता को बनाए रखने के लिए अपने सभी संसाधनों को जुटाना और प्रगति को आगे बढ़ाना जारी रखता है।

स्वतंत्र सहकारी संघवाद का विकास

स्वतंत्र सहकारी संघवाद का उद्देश्य एक समृद्ध, समान और समर्थ समाज की निर्माण में सहायता करना होता है। यह संघवादी ढंग से संगठित समूह बनाकर लोगों को आपसी सहायता और समर्थन प्रदान करता है। यहां, सदस्यों का स्वामित्व और प्रशासनिक नियंत्रण होता है जिससे समूह की सभी सदस्यों को समान अधिकार और लाभ मिलता है।

स्वतंत्र सहकारी संघवाद के माध्यम से, लोग अपनी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जरूरतों को पूरा करने के लिए आपसी सहायता करते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक स्वावलंबनता और समृद्धि को बढ़ावा देना होता है। साथ ही, समूह के सदस्यों की शिक्षा, स्वास्थ्य, और सामाजिक उन्नति में भी सहायता प्रदान की जाती है। यहाँ तक कि कृषि, उद्योग, वित्तीय सेवाएं, और अन्य क्षेत्रों में भी स्वतंत्र सहकारी संघवाद अपनाया जा रहा है। इससे न केवल लोगों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा रहा है, बल्कि सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों में भी विकास का समर्थन किया जा रहा है।

1950 के दशक में सहकारिता

आजादी के बाद 16 वर्षों तक नेहरू की लोकतांत्रिक ढंग से चुनी हुई सरकार थी, जिसमें सहजता, स्वतंत्रता और आशा की स्वतंत्रता के साथ आजादी मिली।

नेहरू के युग में अंतर–सरकारी सहयोग की अन्य महत्वपूर्ण संस्थाओं की संरचना भी देखी गई। देश के संसाधनों के कुशल दोहन के साथ लोगों के जीवन स्तर के तेजी से विकास को बढ़ावा देने के लिए, भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा मार्च 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई थी।[9] यह कोई संवैधानिक संस्था नहीं थी, यह राष्ट्रीय विकास परिषद के समग्र मार्गदर्शन में कार्य करती थी। उपलब्ध बजटीय संसाधनों पर गंभीर बाधाओं के उभरने से राज्यों और केंद्र सरकार के मंत्रालयों के बीच संसाधन आवंटन प्रणाली तनाव में है। सभी संबंधित पक्षों के सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखते हुए, योजना आयोग को एक मध्यस्थ और सुचारू भूमिका निभाने की आवश्यकता थी, और इसमें वह काफी सफल भी हुआ। योजना की संपूर्ण प्रक्रिया में राष्ट्रीय चरित्र प्रदान करने के उद्देश्य से 1952 में एक कार्यकारी आदेश द्वारा राष्ट्रीय विकास परिषद की स्थापना की गई थी। इसकी पहली ठोस बैठक 1967 में हुई, क्योंकि लगभग आधे बड़े राज्य विपक्ष के हाथ में चले गये।

1960 से 1980 के दशक तक युद्धविराम

श्रीमती इंदिरा गांधी ने कांग्रेस की इच्छाओं का विरोध किया, पार्टी संगठन पर संसदीय दल की सर्वोच्चता को पुनः स्थापित किया, राज्य के मुख्यमंत्रियों की शक्ति को समाप्त किया और केंद्र और राज्यों के बीच असंतुलन के स्थान पर एक नया संतुलन स्थापित किया और उनके व्यक्तित्व पंथ ने धीरे–धीरे कांग्रेस को लोकायुक्त पार्टी में बदल दिया।

केंद्र की कांग्रेस सरकार ने केंद्र प्रायोजित विकास परियोजनाओं के लिए बड़ी धनराशि आवंटित करके राज्यों की शक्तियां बढ़ा दी। ये वे परियोजनाएँ थीं जिन्हें राज्यों में लागू किया जाना था लेकिन केंद्र द्वारा प्रशासित किया गया था।

1969 में, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा और केरल के मुख्यमंत्री मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में मिले क्योंकि वे राज्य संबंधों के मुद्दे से असंतुष्ट थे। 1970 के सम्मेलन में, महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने कुछ राज्यों को अपनी गैर–योजना प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए विशेष सहायता देने के लिए योजना आयोग के मानदंड निर्धारित करने की चुनौती दी। राज्यों ने कृषि आय कर का प्रशासन केन्द्र को सौंपने का पूर्णतः विरोध किया।

26 जून 1975 को अशुभ परिस्थिति में आपातकाल की घोषणा से संघवाद भारी दबाव में आ गया।[10] संघीय ढांचे को नुकसान पहुंचाने के अलावा उन्होंने पंजाब में अलगाववादी उग्रवादी आंदोलन के बीज भी बोए। हालाँकि, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आपातकाल की घोषणा संघवाद पर हमला नहीं है। लेकिन यदि ऐसा संदिग्ध परिस्थितियों में किया जाता है, और उस आत्मा के साथ तालमेल नहीं बिठाया जाता है, जिसके साथ इसके लिए प्रावधान किया गया था, तो निश्चित रूप से संघवाद पर हमला होता है।

44वें संशोधन अधिनियम ने अनुच्छेद 356 में किए गए आपातकालीन प्रावधानों के दुरुपयोग को कम करने में मदद की। राष्ट्रपति की निर्णायक घोषणाओं और आपातकाल की निरंतरता को बनाए रखने वाले नियमों को हटाकर, इसने न्यायिक समीक्षा का अवसर प्रदान किया, इसलिए अदालतों ने अधिक भूमिका निभाई।

आपातकाल की यह घोषणा एक और महत्वपूर्ण प्रभाव था। उन्होंने विरोध का अवसर दिया, संघर्ष किया, एक ज्वलंत राजनीतिक कारण और एक दृढ़ता से साझा शिकायत की जिसने नेताओं को अपने मतभेदों को दूर करने और भविष्य के लिए योजना बनाने में सक्षम बनाया। इससे कांग्रेस का पहला विकल्प जनता पार्टी के रूप में भारत के सामने आया, जो 1977 के चुनावों में जीती, जो कांग्रेस के लिए भारतीय राजनीति में एक ढलान का प्रतीक था। ज्ञात हो कि पूरे देश में एक पार्टी की सरकार द्वारा क्षेत्रीय दलों के उदय का विभाजन कांग्रेस के वर्तमान एक–पर–एक पार्टी शासन से होता है। यह संघीय ढांचे के कारण ही था कि लोग सत्ता में भागीदारी की आकांक्षा कर सके।

1978 में दक्षिण भारत के गैर–जनता पार्टी के मुख्यमंत्रियों की बैठक आयोजित की गई। उन्होंने गैर–हिंदी भाषियों पर भाषा अर्थात् हिंदी के मुद्दे पर चर्चा की और प्रधानमंत्री से हस्तक्षेप करने को कहा।

श्रीमती इंदिरा गांधी 1980 में सत्ता में लौटीं। मौजूदा राज्यों के भीतर स्वायत्तता के लिए आंदोलन और आंध्र, असम और पंजाब में संघ से अलग होने के आंदोलन को आगे बढ़ाया गया।

1983 में गैर–कांग्रेस शासित राज्यों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इसने दक्षिणी क्षेत्र के मुख्यमंत्रियों की परिषद के गठन का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने कहा कि राज्यों को अपनी आपसी समस्याओं पर अपने स्तर पर चर्चा करनी चाहिए। यदि वे अपने स्तर पर समस्या का समाधान करने में विफल रहते हैं तो केंद्र से संपर्क किया जाना चाहिए। उन्होंने एनडीसी बैठकों में भी खुद को बौना महसूस किया, जिसमें केंद्र और योजना आयोग का दबदबा था। दक्षिणी क्षेत्र के लिए, मुख्यमंत्री परिषद सभी राज्यों के मुख्यमंत्रियों की परिषद् की अग्रदूत साबित हुई। यह संविधान की सही भावना में सहकारी संघवाद के पक्ष में था।

1990 के दशक के आर्थिक उदारीकरण के साथ, राज्य के नेताओं ने संघीय नीति निर्माण की प्रक्रिया में

साझेदारी की मांग की जो अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ बहुपक्षीय समझौतों की चिंता करती थी।[11] इसने आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताएँ बढ़ा दीं, जिससे संघीय सरकार के लिए एक अधिक महत्वपूर्ण चिंता पैदा हो गई। दूसरे स्तर पर, राज्यों के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए राज्य सरकार का दृष्टिकोण एफडीआई को आकर्षित करने के लिए आया इसलिए, आर्थिक उदारीकरण ने अंतर–क्षेत्राधिकार प्रतियोगिता में राज्यों के बीच अंतर–सरकारी सहयोग के साथ संघीय संबंधों में बदलाव लाया।

21 मई, 1991 को राजीव गांधी की हत्या के बाद इस बात पर गंभीर चिंता थी कि क्या भारत वास्तव में एक व्यवहार्य इकाई है और क्या यह पूरे देश में फैली प्रचलित प्रवृत्तियों के सामने एकजुट हो सकता है।

1980 के दशक के अंत में सहकारिता

1989 में अल्पमत सरकार ने वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाले नेशनल फ्रंट ने कांग्रेस को जगह दी। इसने भारत में बहुदलीय प्रणाली की शुरुआत की। अपने चुनाव घोषणापत्र में, नेशनल फ्रंट ने सत्तारूढ़ दल द्वारा लाए गए अधिक केन्द्रीयता को पीछे छोड़ दिया और ''सच्चा संघवाद'' कहलाने के लिए एक गंभीर प्रतिबद्धता का तर्क दिया। सर्वसम्मत सरकार का विकास हुआ। एनडीसी की दो बैठकें आयोजित की गईं। 8वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए एक बैठक 16 जून, 1989 को आयोजित की गई। दूसरी बैठक 9 अक्टूबर, 1989 को आयोजित की गई, जिस पर सरकार ने योजना आयोग के सदस्यों से मुख्यमंत्रियों को रिपोर्ट देने को कहा था। अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के लिए आवंटित आवंटन की व्याख्या करने के लिए उपयोग किया जाता है, और प्रमुख लक्ष्यों को कैसे पूरा किया जाएगा इसकी योजना बनाई जाएगी।[12]

1990 के दशक में सहकारी

1990–91 के बाद राष्ट्रीय मोर्चा गठबंधन सरकार ने अपना नेता खो दिया, समाजवादी जनता पार्टी के चन्द्रशेखर, इसके अलावा 1991 के चुनावों में पी. वी. नरसिम्हा राव निर्वाचित हुए। 1991 से 1995 तक कांग्रेस की वापसी और 1995 के बाद से एक पार्टी के अधीन सरकार ने लोगों के सामने स्थिरता की इच्छा व्यक्त की, और तथ्य यह है कि संघ तभी जीवित रह सकता है जब केंद्र मजबूत और सक्षम हो। ऐसा केंद्र जो अपनी योजना बनाने में पक्षपाती नहीं है, एक कमजोर केंद्र होगा जो एक स्वस्थ सहकारी संरचना को बनाए नहीं रख सकता है। इसलिए, यदि कोई बहुदलीय केंद्र है, तो यह गारंटी नहीं है कि यह संघवाद को मजबूत करेगा या किसी पार्टी के शासन के केंद्र में बेहतर होगा।

नरसिम्हा राव ने राजनीति की सौहार्दपूर्ण शैली का अनुसरण किया। उन्होंने सभी दलों की बैठकें आयोजित कीं और एनडीसी और आईएससी के प्रावधानों के तहत सांप्रदायिक मुद्दों और मुख्यमंत्रियों की बैठकों की सहमति के लिए राष्ट्रीय एकता परिषद का उपयोग किया ताकि कृषि को बिजली प्रदान करना लगभग पूरी तरह से बंद करना आवश्यक हो। एनडीसी में अत्यधिक प्रयुक्त क्षमता है, यह राष्ट्रीय निर्णय लेने में मुख्यमंत्रियों को एक साथ लाने में बेहद उपयोगी होगी क्योंकि यह न केवल सहयोगी संघवाद को मजबूत करने में मदद करती है, बल्कि केंद्र की सीमाओं को मजबूत करने के साथ–साथ अन्य राज्यों की सीमाओं को भी मजबूत करती है।

वर्ष 1992 में, भारत के लोकतंत्र को त्रि–स्तरीय प्रणाली बनाने के लिए 73वें और 74वें संशोधन अधिनियम पारित किए गए थे।[13] इसे केंद्र की बपौती को नष्ट करने का एक तरीका माना गया। यह रामकृष्ण हेगड़े के दिमाग की उपज थी, इसे पहली बार जून 1987 में कर्नाटक में लागू किया गया था। कई मायनों में, इस उपाय ने संघवाद, लोकतंत्र का विकेंद्रीकृत रूप तैयार किया।

पिछले दशक में सहयोगात्मक, सहानुभूतिपूर्ण, समझौतावादी और अवसरवादी रुझान

वर्तमान रुझान सरकार के विभिन्न स्तरों के बीच शक्तियों के सीमांकन के बजाय सहयोग और समन्वय पर जोर देते हैं। आज मुख्य विषय परस्पर निर्भर है क्योंकि 2003 के 'शाइनिंग इंडिया अभियान' के कारण भाजपा को भारी नुकसान उठाना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस वामपंथियों के समर्थन से जीत गई। यह केंद्र सरकार के लिए एक परीक्षण अवधि थी क्योंकि उसे संतुलन अधिनियम बहुत सावधानी से आगे बढ़ाना था।

स्वतंत्रता के बाद भारत में संघवाद और राज्य–निर्माण

संघवाद अपनी प्रतिभाशाली या अनुकूल प्रकृति के कारण आज दुनिया में सरकार का व्यापक रूप से स्वीकृत रूप है। यह ब्रिटिश औपनिवेशिक राजशाही के खिलाफ एक मजबूत प्रति–उपकरण के रूप में उभरा, जो उस समय पूरी दुनिया में मौजूद था। नतीजतन, संयुक्त राज्य अमेरिका औपनिवेशिक राजशाही को उखाड़ फेंककर पहला आधुनिक लिखित लोकतांत्रिक संविधान लेकर आया। इसके बाद, अमेरिकी संविधान ने शक्तियों के क्षैतिज विभाजन द्वारा सरकारी शक्ति को प्रतिबंधित करके शासन के लोकतांत्रिक तरीकों को अपनाया। ऐसा इसलिए है क्योंकि संघवाद राष्ट्रवाद और क्षेत्रवाद की ताकतों से उत्पन्न होता है।[14]

इसके विपरीत, ब्रिटेन ने एक और सरकार विकसित की, जिसमें ताज और संसद के बीच प्रभुत्व के लिए संघर्ष हुआ। इस अनुभव ने शेष विश्व को एक संघीय लोकतांत्रिक रिपब्लिकन संविधान का चयन करना सिखाया। भारत के मामले में, संवैधानिक निर्माण का चुनाव इसके उपमहाद्वीपीय विस्तार के कारण हुआ था; सामाजिक–सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधताएं ऐतिहासिक रूप से, भारत विविधता के सभी गुणों के साथ, एक बहुलवादी समाज के साथ–साथ बहुसांस्कृतिक भी रहा है। भारत में नहीं, बल्कि बाहरी हमलों से सांस्कृतिक विविधता और मतभेद का भी ख़तरा था।

ब्रिटेन के भारत छोड़ने के बाद एक तरफ चीन, रूस और अफगानिस्तान और दूसरी तरफ नवनिर्मित पाकिस्तान खड़ा हो गया। विभिन्न सांप्रदायिक समस्याओं के कारण क्रिप्स और कैबिनेट मिशन ने अपेक्षाकृत कमजोर केंद्र की वकालत की थी लेकिन संविधान सभा ने इसे स्वीकार नहीं किया। हालाँकि, भारत ने भारत के अंतिम विभाजन और स्वतंत्रता अधिनियम को पारित करने के लिए संघ के एकात्मक स्वरूप को अपनाने के लिए संघीय संविधान का नेतृत्व किया। स्वतंत्रता के बाद, उस समय के अन्य कांग्रेस नेताओं की तरह, जवाहरलाल नेहरू राज्यों के पुनर्गठन के बारे में बहुत विरोधाभासी और अनिश्चित थे, इस तथ्य के कारण कि वे विघटनकारी परिणामों से चिंतित थे। वे एकभाषी राज्यों की व्यवहार्यता और स्थिरता से भी डरते थे, जिनमें दीर्घकालिक स्थिरता नहीं थी। संवैधानिक बहस के दौरान, नेहरू ने प्रशासनिक दक्षता और बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन किया।

इसके विपरीत, अम्बेडकर ने भाषाई आधार पर भारतीय राज्यों के पुनर्गठन की मांग का समर्थन किया। उन्होंने सोचा कि यह सभी भाषाओं, संस्कृतियों की समान जिम्मेदारी को बढ़ाकर लोकतांत्रिक राजनीति के कामकाज को सुनिश्चित करेगा; एक एकीकृत विकास प्रणाली के भीतर, वे प्रशासनिक दक्षता, विशेष क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं और राज्य के भीतर बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच अनुपात पर बल देते हैं।

21वीं सदी के संघवाद के लिए उभरती चुनौतियाँ

21वीं सदी के संघवाद की चुनौतियों का सामना करने वाली नई चुनौतियों ने सहयोगात्मक संघवाद की मौजूदा आवश्यकता को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है, जो सभी मामलों में अनिवार्य रूप से शासन का एक रूप है। तकनीकी प्रगति के कारण, भौतिक और इलेक्ट्रॉनिक दोनों तरह से संपर्क साधने और पहुंच में काफी सुधार हुआ है।

बहुदलीय प्रणाली

आज राज्यों ने बहुदलीय प्रणाली के माध्यम से अपनी राजनीतिक शक्ति हासिल कर ली है, जिसने विभिन्न राज्यों को सामूहिक नीति बनाने और संघ के साथ द्विपक्षीय वार्ता को सक्षम करने के लिए संस्थागत निकायों को छोड़ने में सक्षम बनाया है।[15] जो हमारे संघवाद के लिए एक वार्ताकार चरित्र, अप्रभावी साबित हुआ है।

हालाँकि, केंद्रीय स्तर पर राज्यों द्वारा सत्ता की हिस्सेदारी ने स्थानीयता, संकीर्णता और क्षेत्रवादियों और उप–क्षेत्रीय दलों के राजनीतिकरण को कम करने में योगदान नहीं दिया है। सौदेबाजी की शक्ति में वृद्धि तभी सहकारी संघवाद को मजबूत करने में सफल होगी जब इसके माध्यम से केन्द्रवाद की अनुमानित कमियाँ कम हो जाएँगी।

निष्कर्ष

केंद्र, राज्यों और स्थानीय स्तरों के बीच संबंध भारत के राष्ट्रवाद और भारत की प्रगति के लिए पूर्व–आवश्यकताओं के केंद्र में स्थित है। हालाँकि, हर केंद्र–राज्य के बीच राजनीतिक विवाद है। ऐसा विवाद धीरे–धीरे आर्थिक रूप धारण कर विकास, गरीबी और नकारात्मक विकास को जन्म देता है। जब तक आर्थिक क्षेत्र में राजनीतिक विवादों और रुकावटों का समाधान नहीं होगा, संघीय व्यवस्था में एकीकरण और एकता पूरी नहीं होगी। केंद्र और राज्य दोनों सरकारों को रचनात्मक सहकारी संघवाद के माध्यम से राष्ट्रवाद के संरक्षण के काम में शामिल होना चाहिए, जिसके लिए बहुत अधिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता है।

आज एक साथ आने की आवश्यकता न केवल देश की चुनौतियों का परिणाम है, बल्कि भविष्य में बार–बार आने वाली चुनौतियों को रोकने के लिए भी यही औषधि के रूप में काम करेगी। अकेले सहकारी संघवाद ने अपने अंतर्निहित लचीलेपन और लचीलेपन के कारण संकट और चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होकर देश को भीतर से मजबूत किया है। संघवाद के महत्व को भारतीय संघवाद के मॉडल ने दुनियाभर में बढ़ाया है और भारत दुनिया के लिए एक शानदार उदाहरण भी बना है।

संदर्भ सूची

1. चतुर्वेदी, संजय, (2021) *कुम्भः मंथन का महापर्व,* प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 1924।
2. मिश्रा, महेंद्र के. (2008) *भारत में मानव अधिकार,* ई आरा एसा पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ. 32।
3. सिंह, रंजीत कुमार (2023) भारत का संविधान और राजव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 24।
4. भारद्वाज, आर सी (1995) *भारत की संविधान में संशोधन,* नॉर्दर्न बुक सेंटर, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 6।
5. शर्मा, ब्रजकिशोर (2021) *भारत का संविधानः एक परिचय,* पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, पटपड़गंज, दिल्ली, पृ. 48।
6. सिंह, ज्ञानेन्द्र विक्रम एवं पाठक, कुलदीप कुमार (2022) *भारत में राजनीतिक प्रक्रिया,* ठाकुर पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, लखनऊ, उत्तरप्रदेश, पृ. 64।
7. संकलित, (2019) *राष्ट्रीय आंदोलन और संघ,* सुरुचि प्रकाशन, झंडेवालान, नई दिल्ली, पृ. 35।
8. सिंह, उदयभान (2023) *भारतीय संविधान और राजव्यवस्था,* प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 42।
9. डांगी, वंदना (2018) *आर्थिक वातावरण– बदलते आयाम,* प्रभात प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 110।
10. यादव, आर. एस. (2013) *भारत की विदेश नीति,* पियर्सन एजुकेशन इंडिया, नोएडा, उत्तरप्रदेश, पृ. 281।
11. यादव, आर. एस. (2013) *भारत की विदेश नीति,* पियर्सन एजुकेशन इंडिया, नोएडा, उत्तरप्रदेश, पृ. 252।
12. दीक्षित, जे. एन. (2021) *भारत–पाक संबंध,* प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, पृ. 1987।
13. शर्मा, ब्रिजकिशोर (2015) *भारत का संविधानः एक परिचय,* पी एच आई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, पटपड़गंज, दिल्ली, पृ. 299।
14. मिश्र, कौशल किशोर (2022) *भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवादः पंडित दीनदयाल उपाध्याय के संदर्भ में,* के के पब्लिकेशन, मेरठ, पृ. 177।
15. तिवारी, संत कुमार (2023) *राजनीतिक व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन,* किताब राइटिंग पब्लिकेशन, मुंबई, पृ. 253।

––==00==––